मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म

डॉ. महेन्द्र चौधरी
व्याख्याता (इतिहास),
सेठ आर.एल. सहरिया राजकीय महाविद्यालय, कालाडेरा
(जयपुर)

12वीं शताब्दी के पश्चात् भी कतिपय चौहान व सोलंकी राजाओं के अंतर्गत राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में जैन धर्म प्रगतिषील रहा। 13वीं एवं 14वीं शताब्दी में अधिकांष राजपूत राजवंष राजस्थान में सुस्थापित हो गये थे। विभिन्न स्थानों में राजधानियाँ स्थापित कर 3–4 शताब्दी के संघर्ष के उपरान्त, अपनी रियासतें स्थापित कर उन्होंने कुछ स्थिरता प्राप्त की थी। धर्म सहिष्णु राजपूत शासक धर्म विमुख नहीं हुये। इस काल में जैन धर्म पूर्ववर्ती शताब्दियों की अपेक्षा और अधिक उन्नतिशषील हुआ। आंतरिक साम्प्रदायिक विखण्डन के अनन्तर भी अनेक मंदिर निर्मित हुये, असंख्य मूर्तियों की प्रतिष्ठा की गई तथा सहस्त्रों ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ व मौलिक ग्रंथ निबद्ध किये गये।

वागड़ प्रदेष में जैन मत – डूँगरपुर, बाँसवाड़ा और प्रतापगढ़ राज्यों का सम्मिलित नाम वागड़ प्रदेष था। यहाँ के शासकों के संरक्षण में जैन मत बहुत समृद्ध हुआ। इस क्षेत्र में दिगम्बर जैनों का अधिक प्रभाव था। इस क्षेत्र की प्राचीन राजधानी वटप्रदा (बड़ौदा) थी। इस क्षेत्र में पार्ष्वनाथ मंदिर की एक षिला पर 24 तीर्थंकरों की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। इस षिला का 1307 ई. का लेख, खरतरगच्छ के जिनचन्द्र सूरि द्वारा इसकी स्थापना का वर्णन करता है। मेवाड़ में, धुलेव में स्थित केसरियाजी की प्रतिमा, मूलतः इस स्थान से ही ले जाई गई थी। डूँगरपुर का प्राचीन नाम ''गिरिवर'' था, जिसकी स्थापना लगभग 1358 ई. में हुई थी। 1370 ई. में जयानंद विरचित ''प्रवास गीतिकात्रय'' से ज्ञात होता है कि यहाँ पर पाँच जैन मंदिर और लगभग 900 जैन परिवार निवास करते थे।[1]

हाड़ौती क्षेत्र में जैनधर्म – मध्यकाल में हाड़ौती क्षेत्र में जैन मत श्रावकों में पर्याप्त लोकप्रिय था किंतु यहाँ राज्याश्रय प्राप्त करने के अधिक अभिलेखीय प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। मध्यकाल में यह प्रदेष मुगल सम्राटों के दिल्ली से मालवा जाने के मार्ग में था। मुगल अभियानों का इन शताब्दियों में इस प्रदेष में बाहुल्य रहा, अतः जैन मत व्यापक रूप से राजाओं का संरक्षण ग्रहण नहीं कर पाया, किंतु स्थानीय शासक जैन धर्म के विरोधी भी नहीं थे। इसका स्पष्ट प्रमाण हमें हाड़ौती की राजधानी बून्दी में देखने को मिलता है, जहाँ वर्तमान में 12 दिगम्बर जैन मंदिर, एक नसियाँ व 2 श्वेताम्बर जैन मंदिर हैं। हाड़ौती का प्रसिद्ध जैन तीर्थ केषोरायपाटन 14वीं शताब्दी में बून्दी रियासत के अंतर्गत आ गया था। यह नगर मालवा शासन के अंतर्गत था एवं मालवा एवं धाराधिपति परमारवंषीय भोजदेव के प्रांतीय शासक, परमारवंषीय श्रीपाल द्वारा शासित था। इस मंदिर में कई मध्यकालीन जैन प्रतिमाएँ हैं और कुछ तो 1270 ई, 1293 ई. की भी हैं।[2] ''सिद्ध चक्र कथा'' ग्रन्थ की प्रषस्ति से ज्ञात होता है कि जब यह गंथ नैनवां में 1458 ई. में लिखा गया था, तब वहाँ मालवा के सुल्तान अलाउद्दीन का राज्य था।

सिरोही राज्य में जैन मत – अर्बुद मण्डल का यह प्रदेष परंपराओं के अनुसार जैन मत का समृद्ध व उत्कर्षषील केन्द्र रहा। मुस्लिम आक्रमणों एवं विध्वंस के बावजूद जैनाचार्यों की प्रेरणा व राजकीय संरक्षण से मंदिरों का जीर्णोद्धार होता रहा और यह क्षेत्र जैन धर्म को समृद्ध बनाता रहा। धनारी जैन मंदिर के 1291 ई. के लेख में परमार वंष के नये राजा सालासुत जैतमाल का नाम है। सम्भवतः यह लेख मंदिर के जीर्णोद्धार से संबंधित है। सिरोही क्षेत्र के वधिना के शांतिनाथ मंदिर के 1302 ई. के लेख में महाराज सामन्त देवसिंह के कल्याणविजय राज्य में, शांतिनाथ देव की यात्रा महोत्सव के निमित्त कुछ सोलंकियों द्वारा सामूहिक रूप से गाँव, खेत और कुएँ

के हिसाब से कुछ अनुदान की व्यवस्था का उल्लेख है। जूना, बाड़मेर से प्राप्त 1295 ई. के आदिनाथ मंदिर के लेख में भी सामंतसिंह देव का उल्लेख है।

जैसलमेर क्षेत्र में जैनधर्म – मध्यकाल में जैसलमेर में भाटी राजपूतों के शासनकाल में जैन धर्म अत्यधिक उन्नतिशील हुआ। 13वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जैसलमेर नगर भाटियों की राजधानी के रूप में अस्तित्व में आया। जैसलमेर भण्डार में संग्रहीत 1228 ई. की कृति ''धन्यश्शालिभद्र चरित्र'' में इस नगर का नामोल्लेख है, जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि यह नगर निर्माण के तुरंत बाद से ही जैन धर्म का केन्द्र रहा होगा।[3] 1283 ई. में जिन प्रबोध सूरि के जैसलमेर आगमन पर महाराजा कर्ण ने अपनी सेना के साथ उनका हार्दिक स्वागत किया था। महाराजा के आग्रह पर सूरिजी ने चातुर्मास वहीं व्यतीत किया।[4]

जोधपुर और बीकानेर राज्यों में जैन मत – जोधपुर और बीकानेर राज्यों में, मुख्यतः राठौड़ शासकों के संरक्षण में, इस काल में जैन मत बहुत पुष्पित एवं पल्लवित हुआ। चालुक्य राजकुमार पाल द्वारा यहाँ एक विहार का निर्माण देवाचार्य की अध्यक्षता में 1164 ई. में हुआ था। इसके पष्चात् 1185 ई. में चहमानवंषीय समरसिंह देव की आज्ञा से भंडारी यषोवीर ने इसका पुनर्निर्माण करवाया था। 1199 ई. में यहाँ ध्वजारोहण, तोरण आदि की प्रतिष्ठा हुई और फिर 1211 ई. में दीपोत्सव पर पूर्ण देव सूरि के षिष्य रामचन्द्राचार्य ने स्वर्ण कलश की प्रतिष्ठा की। महाराजा चाचिगदेव के शासनकाल के, जालौर के महावीर मंदिर के 1266 ई. के लेख में, मठपति गोष्ठिक के समक्ष मंदिर के निमित्त अनुदान का उल्लेख है। जालौर से ही प्राप्त महावीर मन्दिर के 1263 ई. के लेख में भी मन्दिर को दिये गये दान का उल्लेख है। जसोला से 3 मील दूर स्थित, नगर में जैन मत अत्यधिक लोकप्रिय था। यह नगर जोधपुर राज्य की प्राचीन राजधानी खेड़ा के शासक मल्लिनाथ के उत्तराधिकारियों द्वारा शासित होता था। इस स्थान के राठौड़ शासक उदार दृष्टिकोण वाले थे। अतः जैन मत उन्नतिशील रहा।

जयपुर राज्य में जैनधर्म

जयपुर राज्य में कछावा शासकों के अन्तर्गत जैन धर्म उन्नति और समृद्धि को प्राप्त हुआ। राज्य में लगभग 50 जैन दीवान कार्य करते थे, जिनके संरक्षण में धार्मिक पुस्तकों की प्रतियाँ, मन्दिरों का निर्माण और प्रतिमाओं के प्रतिष्ठा आयोजन सम्पन्न हुये। इस काल में जयपुर राज्य की विभिन्न छोटी–छोटी रियासतों में शक्तिशाली ठाकुरों की जागीरदारी में भी जैन धर्म को पर्याप्त संरक्षण और प्रवर्द्धन प्राप्त हुआ। हिण्डौन के श्रेयांसनाथ मन्दिर की आदिनाथ एकतीर्थी के 1485 ई. के लेख में राजा मानसिंह राउल का नामोल्लेख है।

अलवर राज्य में जैनधर्म

अजबगढ़, नौगामा और राजगढ़[5] से प्राप्त जैन प्रतिमाओं के अभिलेखों तथा कतिपय प्राचीन जैन–स्मारकों के अभिलेखीय अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि इस प्रदेश में जैन धर्म प्राचीन काल से ही अस्तित्व में था।

प्रथम वर्ग में वे शिलालेख आते हैं जिनमें मंदिर के निर्माण एवं पुनर्निमाण के विवरण समाहित होते हैं। मुसलमानों द्वारा अनेक जैन मंदिर तोडे गए जिनका पुनः निर्माण कराया गया तथा मूर्तियां जो खंडित हो चुकी थीं उनकी पुनः उसी रूप में प्रतिष्ठा की गयी। इस वर्ग में ओसिया मंदिर के वि. 1234, 1235, 1236, किराडू के वि. 1235, सांडेश्वर के वि. 1236, कायन्द्रा के वि. 1234 आदि शिलालेखों का उल्लेख किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में लालराई शिलालेख वि. 349, 353 आबू सं. 251 आदि भी देखे जा सकते हैं।

अन्य शिलालेखों में कीर्ति स्तंभ एवं मान स्तंभ के शिलालेख लिए जाते हैं। मानस्तंभ जैन मंदिरों के समुख खडे किए जाते हैं उन पर लेख होते है जैसे महावीर जैन मंदिर मान स्तंभ लेख, अजमेर नासियां मान स्तंभ लेख

आदि। मंडौर से सबसे प्राचीन वि. 918 का शिलालेख मिला हैं। जैन कीर्ति स्तंभ चित्तौड़ में ऐसे लेख अंकित हैं। निषेधिकाओं पर भी लेख पाये जाते हैं। जैन शिलालेख व विभिन्न स्थानों पर मिलते हैं। इनमें मंदिर स्तंभ, मूर्ति, सुरह, निषेधिका, समाधि, छतरी, चबूतरों आदि प्रमुखता से उल्लेखनीय हैं।

शिलालेखों के समान प्रशस्तियां भी महत्वपूर्ण हैं पर वे प्राचीन समय की नहीं मिलती। प्रशस्ति लेखन की पद्धति 8वीं शती से प्रारंभ हुई। इनमें समय दिया होता है। इनसे संघ, गण, गच्छ एवं उनके आचार्यों की जानकारी मिलती है। पट्टावलियां भी इतिहास की विश्वसनीय स्रोत हैं। ये जैनाचार्यों के जीवन की घटनाओं पर प्रकाश डालती हैं। वंशावलियां हमें किसी जाति के मूल को बताती हैं तथा उसके गोत्र की सूचना देती हैं। इसी प्रकार तीर्थमाला, तीर्थस्तवन, पत्र एवं दस्तावेज तथा इसी प्रकार चित्रित पांडुलिपियां भी इतिहास के लिए महत्वपूर्ण प्रमाणित हुई है।[6]

चन्द्रगुप्त मौर्य जैन धर्मावलम्बी था।[7] इस शासक के पार्श्वनाथ की स्वर्णमूर्ति बनवायी एवं इसकी प्रतिष्ठा श्रुतकेवली भद्रबाहु ने करवायी। बिन्दुसार भी संभवतः जैन धर्मानुयायी था। टाड के कुंभलमेर में एक प्राचीन मंदिर की सम्प्रति मौर्य द्वारा निर्मित बताया था। टाड ने इसे द्वितीय शती ईस्वी पूर्व का बताया था।[8] भंडारकर ने टाड की इस धारणा को निर्मूल बताया था। इस मंदिर को वे 13वीं शती का या इसके भी बाद के काल का मानते हैं।[9] संप्रति कुणाल का पुत्र था। अभिलेखों की परम्परा में बड़ली के बाद जो स्पष्ट रूप से जैन धर्म से संबंधित लेख हैं, वह हैं प्रतिहार कक्कुक का वि.सं. 918 प्राकृत में लिखा हुआ घटियाला लेख जिसमें जिनदेव का मंदिर बनवाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

नाडालाई में एक जैन मंदिर आदिनाथ को समर्पित है। इसकी मूर्ति पर वि. 1686 का एक लेख अंकित है। जिसके अनुसार समस्त जैन समुदाय ने इसका पुनः निर्माण करवाया था। मूल रूप से संप्रति ने इसे बनाया था। राजस्थान में जैन धर्म का विस्तार 8वीं और नौवीं शती में हुआ। इसका श्रेय हरिभद्र सूरि को दिया जाता है। जो चित्तौड़ के शासक जितारि का पुरोहित था। वस्तुतः जैन धर्म का समुचित प्रसार राजपूत काल में राजस्थान में हुआ। यद्यपि अनेक राजपूत राजा या तो वैष्णव थे या फिर शैव धर्मानुयायी थे पर वे अन्य धर्मों के प्रति भी उदार थे एवं उनमें भी श्रद्धा रखते थे। गुजरात, मालवा और राजपूताना की राजपूत राज्यों में जैन धर्म का विकास होता रहा।

प्रतिहार शासकों के काल में जैन धर्म प्रगति पथ पर अग्रसर होता रहा। ओसिया में एक महावीर मंदिर विद्यमान है जिसका निर्माण वत्तसराज के काल में हुआ।[10] वत्सराज जैन लेखक जिनसेन का समकालीन था जिसने उसका उल्लेख पुराण में किया है। सन् 792 में वत्सराज का पुत्र नागभट्ट राजगद्दी पर आसीन हुआ। उसका विवाह वणिक की पुत्री से हुआ। वणिक के वंशजों ने जैन धर्म अपना लिया। उसमें से एक कर्मशाह ने शत्रुंजय तीर्थ का 1530 ई. उद्धार किया। मिहिर भोज ने भी उनके प्रभाव के कारण जैन धर्म का प्रश्रय प्रदान किया। कक्कूक मंडौर का प्रतिहार नरेश था। वह संस्कृत का विद्वान एवं जैन धर्म का संरक्षण प्रदान करने वाला था। उसके 861 ई. के घटियाला शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसने एक जैन मंदिर का निर्माण करवाया।[11] इस प्रकार अन्य धर्मों के अनुयायी होते हुए भी प्रतिहार शासकों ने जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया।

चौहान शासक यद्यपि शैव थे पर उन्होंने भी जैन धर्म का प्रश्रय प्रदान किया। पृथ्वीराज चौहान प्रथम 1101 ई. में शासन करता था।[12] उसने जैन मंदिर रणथंभौर पर स्वर्ण कलश चढ़ाया था।[13] उसका उत्तराधिकारी पुत्र अजयराज था। उसने नवनिर्मित अजमेर में जैन मंदिर की स्वीकृति प्रदान की थी और पार्श्वनाथ मंदिर पर स्वर्ण

कलश चढ़ाया। श्वेताम्बर आचार्य धर्मघोष सूरि और दिगम्बर आचार्य गुणचन्द्र के मध्य हुए शास्त्रार्थ में निर्णायक भी बना। उसका पुत्र अर्णोराज हुआ। उसने एक विशाल जैन मंदिर निर्माण की स्वीकृति प्रदान की।[14]

सांडेराव प्रस्तर अभिलेख 1164 ई. जो केल्हण देव के राज्यकाल का है में आया है कि कल्हण देवी राजमाता ने सांडेरकगच्छ के मूलनायक तीर्थंकर महावीर को एक हल भूमि का दान दिया। लालराई प्रस्तर अभिलेख 1176 ई. में आया है कि राज पुत्र लखनपाल और अभयपाल ने शांतिनाथ देव की देव यात्रा के लिये संयुक्त रूप से दान दिया। एक वारक जौ भड़ियाऊ अरहट से दिया गया। अगले इसी समय के लालराई शिलालेख में भी तीर्थंकर शांतिनाथ मंदिर को दान देने की बात कही गयी है। सांडेराव के दूसरे शिलालेख 1179 ई. में तीर्थंकर पार्श्वनाथ को दान देने का उल्लेख है। इसमें सांडेरक के घरों में रहने वालों को चार द्रम्मं देव को भेंट स्वरूप देने का निर्देश है।

जाबालपिुर के चौहानों ने भी जैन धर्म को बराबर प्रश्रय प्रदान किया। जालौर का प्रस्तर लेख 1182 ई. का जो समर सिंह देव के समय का है कि श्रीमाल परिवार जशोदेव ने जैन मंदिर का मंडप बनाया। एक दूसरे शिलालेख के अनुसार 1185 ई. में यशोवीर ने एक जैन मंदिर का पुनर्निमाण करवाया। 1245 ई. के शिलालेखों में चाचिगदेव के राज्य काल में महावीर भंडार को 50 द्रम्मों के दान की बात कही गयी है। दूसरा 1275 ई0 के शिलालेख के अनुसार नरपति ने पार्श्वनाथ मंदिर को दान दिया था।[15]

भगडोली में एक शिलालेख महावीर मंदिर को भूमि प्रदान की। 1243 ई. के धारा वर्ष की पत्नी शृंगारदेवी ने 1197 ई. में मंदिर को भूमि प्रदान की। 1243 ई. के शिलालेख के अनुसार अल्हण सिंह के राज्य काल में पार्श्वनाथ मंदिर को भेंट दी गयी। अल्हण सिंह चंदेरी का शासक था।[16] 1334 ई. के एक शिलालेख के अनुसार शासक तेजपाल और उसके मंत्री कूपा ने एक टंकी बनाकर महावीर मंदिर को भेंट की। परमारों ने राजस्थान के बड़े भू–भाग पर शासन किया जिनमें मेवाड़, सिरोही, कोटा और झालावाड़ के प्रदेश आते हैं। जहां जैन धर्म अच्छी स्थिति में रहा है।

बयाना शिलालेख में 1043 ई. में विष्णुसूरि और महेश्वर सूरि के नाम आते हैं और विजयपाल के राज्यकाल में विष्णु सूरि के निधन की चर्चा आती है। नारोली से जैन मूर्तियां मिली हैं जिन पर 1136 ई. का लेख अंकित है।[17] कुमारपाल के शासनकाल में शांतिनाथ मंदिर पर स्वर्णकलश बडे समारोह के साथ चढ़ाये गये। विदिदेव सूरि ने त्रिभूवनगिरि दुर्ग में हुए शास्त्रार्थ में किसी विद्वान को पराजित किया।

मेवाड़ में भी जैन धर्म फलता–फूलता रहा। भतृभट्ट 943 ई. में मेवाड़ का शासक था उसने गुहिल विहार बनवाया और उसमें आदिनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित कराई।[18] उसके पुत्र अल्लट के मंत्री आहाड ने एक जैन मंदिर बनवाया।[19] समरसिंह की माता जयतल्ला देवी ने पार्श्वनाथ का मंदिर बनाया। इसी प्रकार गुणराज जो मोकल का कोषाध्यक्ष था, न महावीर का मंदिर बनाया[20] महाराणा कुंभा ने साड़दी में जैन मंदिर निर्माण कराया।[21] जैन कीर्ति स्तंभ 15वीं शती में पुन्नसिंह ने बनवाया। नागदा के अद्भुतजी मंदिर में एक शांतिनाथ की विशाल मूर्ति स्थापित की गई। इसे व्यापारी सारंग ने स्थापित किया। उदयपुर शिलालेख 1499 ई. के अनुसार रायमल के शासन में महावीर मंदिर का निर्माण करवाया गया।[22] महाराणा प्रताप और उनके पुत्र अमर सिंह ने भी जैन धर्म को प्रश्रय दिया।

डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ में भी जैन धर्म धर्म की उपस्थिति ज्ञात होती है। कोटा राज्य में भी जैन धर्म की अच्छी स्थिति रही। शेरगढ़ में 11वीं शती में तीन विशाल प्रतिमाएं स्थापित की गयी। इन पर अंकित लेख से ज्ञात होता है कि शेरगढ़ का नमा कोषवर्द्धन[23] था सिरोही में जैन धर्म अतीव समृद्धावस्था में रहा।

जैसलमेर भी जैन धर्म का प्रमुख स्थान रहा है। लोदवा में सन् 994 ई. में सागर नामक राजा था इसके पुत्रों ने पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया।[24] आगे चलकर जब लोद्रवा 1283 ई. में नष्ट हो गया तो जैसलमेर राजधानी बना। लक्ष्मणसिंह के राज्यकाल में चिंतामणि पार्श्वनाथ का मंदिर बना।

ओसिया के वि. 1234, 1235, 1236 के शिलालेख, किराडू का वि. 1235 का लेख, सांडेराव का वि. 1236 का लेख, कायाद्रा का वि. 1234 का लेख आदि मुसलमानों द्वारा ध्वस्त मंदिरों के पुनर्निर्माण की चर्चा करते हैं। अलाउद्दीन खिलजी की फौजों ने मूंगथला, जीरावला, आबू, चित्तौड, रणथभौर और जालौर के जैन मंदिरों को ध्वस्त कर डाला था। रणकपुर, नाडलाई और वरमाना शिलालेख भी इसकी चर्चा करते हैं। जालौर का वि. 1239 का शिलालेख जालौर किले में निर्मित जैन मंदिर के मंडप बनाने की चर्चा करता है। जालौर के महावीर मंदिर का वृत एक वि. 1294 के शिलालेख में मिलता है।

जालौर किले में कुमार विहार प्रसिद्ध जैन मंदिर था जिसका निर्माण हेमचन्द्र सूरि के उपदेशों से प्रभावित होकर कुमार पाल की आज्ञा से वि. 1221 में हुआ था। यह बात यहां प्राप्त एक शिलालेख से ज्ञात होती है। इस लेख ने क्रमशः वि. 1268 में इस मंदिर पर पर्णदेवसूरि के शिष्य श्रीरामचन्द्राचार्य ने स्वर्ण कलश बड़े समारोह पूर्वक चढ़ाया गया था। आबू का विक्रमी 1296 का शिलालेख के अनुसार नागपुरीय बराहुदीय कुटुम्ब ने जालौर के पार्श्वनाथ मंदिर में आदिनाथ की मूर्ति की स्थापना की थी। नाना शिलालेख वि. 1274 के अनुसार पार्श्वनाथ की अन्य प्रतिमा यहां स्थापित की गयी थी। सांचौर ओर भीनमाल में भी कई जैन मंदिरों की उपस्थिति की बात शिलालेखों से ज्ञात होती है। भीनमाला में महावीर मंदिर था जिसकी सूचना वि. 1333 के शिलालेख से मिलती है। नागोर रतनपुर में भी कई जैन मंदिर थे फलौदी एवं मेड़ता में भी जैन मंदिरों की उपस्थिति थी। लाडनू मारोठ, केन्दि, मेवाड़, चित्तौड़, करेडा, नागदा, आहाड़, जावर, डूंगरपुर, बरोदा, गलियाकोट, सागवाड़ा, आसपुर, अथूर्णा, देवलिया, सिरोही, आबू आदि स्थानों में कई जैन मंदिर अवस्थित है।[25]

यहाँ तक श्वेताम्बर जैन के विभिन्न सम्प्रदायों के संघ और गच्छ विभाजन का प्रश्न है, आरंभिक राजस्थान में धनेश्वर गच्छ (918 वि.सं. का घटियाला लेख) का उल्लेख प्राप्त होता है। आगे चलकर विभिन्न गच्छों और आचार्यों के उल्लेख अभिलेखों में मिलते हैं, किन्तु आरंभिक अभिलेखों में इनके उल्लेख की आवश्यकता नहीं समझी गई। 11–12वीं शताब्दी में यद्यपि इनमें से बहुत से सम्प्रदायों के विभाजन हो चुके थे। वि. 1052 के अजमेर म्यूजियम प्रतिमा लेख से वागट संघ, वि. 1100 के बयाना प्रस्तर लेख[26] से काम्यक गच्छ वि. 1172 के सेवादी प्रस्तर लेख[27] से सण्डेरक गच्छ, वि. सं. 1239 के जालौर प्रस्तर लेख[28] से चन्द्रगच्छ के भी कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं।

जैन सम्प्रदाय ने समवयात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए महिषमर्दिनी को सच्चिका रूप देकर जैन देवी–देवताओं के वर्ग में सम्मिलित कर लिया। किराडू के सचियाय माता के तोरण पर लिखे वि. 1144 के लेख में ''श्री अम्बिका देवी'' का उल्लेख है। पुनः वि. 1234 के लेख में सचियाय माता के जंघाधारा लेख में सच्चिका देवी एवं क्षेमकरी, चंडिका और शीतला की प्रतिमा स्थापना का उल्लेख है। इसी सच्चिका की बाड़मेर के पास जूना नामक स्थान में भी प्रतिमा का निर्माण वि. 1237 में करवाया गया और श्रीकुकुद सूरि ने उसकी प्रतिष्ठा की।[29]

निष्कर्षतः तीर्थंकर महावीर के जीवनकाल में ही राजस्थान के कुछ भागों में जैन धर्म के प्रचार एवं प्रसार का ज्ञान परवर्ती जैन साहित्य से होता है। अवन्ति महाजनपद के अंतर्गत राजस्थान के कुछ पूर्वी भाग भी सम्मिलित थे

जहां का शासक प्रद्योत महासेन महावीर का अनुयायी था। भीनमाल के 1276 ईस्वी के एक अभिलेख से विदित होता है कि महावीर स्वामी स्वयं श्रीमाल नगर आये थे। आबूरोड़ से 8 किलोमीटर पश्चिम में मुंगस्थल से प्राप्त 1396 ईस्वी के शिलालेख से पता चलता है कि महावीर स्वयं अर्बुदभूमि में आये थे। उपर्युक्त विवरण बहुत बाद के हैं तथा इतिहास के प्रकाश में इनकी सत्यता प्रमाणित नहीं होती। तथापि महावीर युग में सिंधु सौवीर के शासक उदाइन और अवंति महाजनपद के शासक प्रद्योत महासेन के जैन मतावलंबी होने की संभावना को निरस्त नहीं किया जा सकता है। राजस्थान में जैन धर्म के प्रसार का सर्वाधिक ठोस प्रमाण ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी का बडली शिलालेख है जिसमें वीर निर्वाण संवत् के 84 वें वर्ष तथा 'माझमिका' का उल्लेख है।

संदर्भ

1 ओझा, जी.एच., मेवाड़ राज्य का इतिहास, अजमेर, 1936, पृ. 42
2 कासलीवाल, कस्तूरचन्द, राजस्थान का प्राचीन जैन तीर्थ केशोरायपाटन, बूँदी, 1985, पृ. 13
3 उपाध्याय, जिनपाल, मुनि, जिनविजय द्वारा सम्पादित, खरतरगच्छ बृहदगुर्वावली, बम्बई, 1956, पृ. 58
4 नाहर, पूर्णचन्द्र, जैन लेख संग्रह, क्रम 2114
5 एनुअल रिपोर्ट राजपूताना म्यूजियम, अजमेर, 1919–20, क्रम 3 एवं 4
6 जैन, कैलाश जैनिज्म इन राजस्थान, पृ. 5–6
7 स्मिथ, दी अरली हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ. 154
8 टॉड, अनल्स एण्ड एंटीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग–2, पृ. 770–780
9 प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया वेस्टर्न सर्कल,पृ. 41
10 आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया वेस्टर्न सर्कल, पृ. 108
11 दी हिस्ट्री ऑफ इंडिया एज टोल्ड वाई इटस ओन हिस्टोरियंस, खंड–1, पृ. 504
12 एनुअल रिपोर्ट ऑफ दी राजस्थान म्यूजियम, संख्या 4
13 भंडारकर, कैटेलोग ऑफ मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दी पट्टन, पृ. 316
14 विनयसागर, म., खतरगच्छ वृहद्गुहावली, पृ. 16
15 प्राग्रेस रिर्पोट ऑफ आर्कियोलोजिक सर्वे ऑफ इंडिया, वेस्टर्न सर्कल, पृ. 55
16 एन्यूअल रिपोर्ट ऑफ राजस्थान म्यूजियम, अजमेर, पृ. 22
17 प्राग्रेस रिर्पोट ऑफ आर्कियोलोजिक सर्वे ऑफ इंडिया, वेस्टर्न सर्कल, प . 116
18 जैन सत्यप्रकाश, वर्ष 7, दीपोत्सव अंक, पृ. 146–147
19 जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 193
20 राजपूताने के प्राचीन जैन स्मारक, पृ. 137
21 हिस्ट्री ऑफ इंडियन आर्कियोलोजी, पृ. 240
22 प्रोग्रेस रिर्पोट ऑफ आर्कियोलोजिक सर्वे ऑफ इंडिया, वेस्टर्न सर्कल, पृ. 60
23 ओझा, कोटा राज्य का इतिहास, पृ. 28
24 नाहर, जैन इन्सक्रिप्शंस, भाग–4, सं. 2543
25 सोमानी, आर.वी. जैन इंसक्रिप्शंस आफ राजस्थान, पृ. 135–141
26 जैन, कैलाश जैनिज्म इन राजस्थान, पृ. 28
27 शर्मा, कृष्णगोपाल, अर्ली जैन इंस्क्रिप्शंस ऑफ राजस्थान, पृ. 72
28 जैन, कैलाश, जैनिज्म इन राजस्थान, पृ. 60
29 श्रीमाली, राजस्थान के अभिलेख, भाग–1, पृ. 182